जनसत्ता

शांति का रास्ता

अलग बोडोलैंड राज्य की मांग को लेकर असम में लंबे समय से चले आ रहे हिंसात्मक आंदोलन ने अब शांति का रास्ता अपनाया है। बोडोलैंड आंदोलन चलाने वाले संगठन नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड (एनडीएफबी) ने सोमवार को केंद्र सरकार के साथ शांति समझौते की जो पहल की है, वह स्वागतयोग्य है। हालांकि इस तरह का शांति समझौता हो पाना कोई आसान काम नहीं था, लेकिन केंद्र और राज्य सरकार ने उग्रवादियों से बातचीत की पहल करते हुए जो सकारात्मक रुख दिखाया, उसी का नतीजा है कि एनडीएफबी जैसे खूंखार संगठन ने भी शांति और बातचीत के विकल्प को तवज्जो दी है। हालांकि उग्रवाद को लेकर सरकार के कड़े रुख से भी उग्रवादी संगठनों को यह कड़ा संदेश तो गया ही है कि अब और ज्यादा हिंसा के रास्ते पर नहीं चला जा सकता और सरकार भी झुकने वाली नहीं है। इसलिए अगर उग्रवादी गुट हथियार डाल कर कोई सकारात्मक कदम उठाते हैं तो यह प्रशंसनीय है। सोमवार को केंद्रीय गृह मंत्री की मौजूदगी में दिल्ली में असम के मुख्यमंत्री और एनडीएफबी के विभिन्न धड़ों के बीच हुए इस त्रिपक्षीय समझौते को असम में अमन की दिशा में सरकार की बड़ी कामयाबी भी माना जा रहा है।

असम में अलग बोडोलैंड राज्य की मांग पिछले चार दशक से चल रही है और ऑल बोडो स्टूडेंट्स यूनियन (आबसू), यूनाइटेड बोडो पीपुल्स ऑर्गनाइजेशन जैसे संगठन इस आंदोलन के अगुआ रहे हैं। लेकिन पिछले चार दशक से असम जिस तरह की राजनीति से रूबरू होता रहा है, उसमें उग्रवादी गुटों को पनपने के मौके मिलते गए और सरकारों ने ऐसे मुद्दों को बातचीत से हल करने के बजाय सख्ती से कुचलने की रणनीति पर ज्यादा जोर दिया। उसी का नतीजा रहा कि आज तक पूर्वोत्तर में अलग राज्यों की मांग को लेकर उग्रवादी गुट सक्रिय हैं। एक मोटे अनुमान के मुताबिक बोडो उग्रवादियों की हिंसा में पिछले चार दशक में चार हजार से ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं। बोडो ब्रह्मपुत्र घाटी के उत्तरी हिस्से में बसी असम की सबसे बड़ी जनजाति है। जब राज्य में इनकी जमीन पर दूसरे समुदायों का अनाधिकृत प्रवेश बढ़ने लगा और बोडो लोगों की जमीन और संसाधनों पर आंच आने लगी, तो असंतोष पनपना स्वाभाविक था। समस्या तब और गंभीर होती गई जब आंदोलन का नेतृत्व भी कई धड़ों में बंटता चला गया और फिर अलग-अलग गुटों ने हथियार उठाने को अंतिम विकल्प समझ लिया। ऐसे में सरकार किससे बात करे, या कौन सा धड़ा सरकार से बात करे, यह अड़चन बनी रही। एक-दो धड़े साथ होते हैं तो तीसरा उनके विरोध में आ जाता है और समस्या सुलझने के बजाय उलझती चली जाती है। यही बोडोलैंड आंदोलन के साथ भी हुआ।

फिलहाल केंद्र, राज्य और एनडीएफबी के बीच जो समझौता हुआ है, उसमें सबसे बड़ी बात तो यह है कि अब एनडीएफबी ने बोडोलैंड की मांग छोड़ दी है। एनडीएफबी के डेढ़ हजार से ज्यादा उग्रवादी तीस जनवरी को हथियार डाल देंगे। पर केंद्र और राज्य सरकार के समक्ष बड़ी चुनौती ये है कि वह बोडो क्षेत्रों में विकास के काम तत्काल शुरू करे। बोडोलैंड क्षेत्रीय परिषद् (बीटीसी) को और अधिकार दिए जाएं। मूल बात विकास की है। अगर सरकार बोडो इलाकों के आर्थिक विकास और राजनीतिक मसलों पर ध्यान दे, नौजवानों को रोजगार मिले तो कोई कारण नहीं कि बोडो समुदाय हथियार उठाने को मजबूर हो। यह समझौता शांति की दिशा में बड़ी पहल है, इसलिए हर पक्ष को अमल भी ईमानदारी से करना होगा।

संकट का तापमान

पर्यावरण के सामान्य चक्र में आ रहे बदलावों की अनदेखी या फिर उसमें जाने-अनजाने बाधा पहुंचाने का नतीजा क्या हो सकता है, अब यह सामने आने लगा है। हालांकि पिछले दो-तीन दशकों से लगातार इस मसले पर होने वाले अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में गहरी चिंता जताई जाती रही है और जलवायु में होने वाली उथल-पुथल के व्यापक परिणामों को लेकर चेतावनियां भी जारी हुई हैं। विडंबना यह है कि लगभग सारी तस्वीर साफ होने के बावजूद शायद ही दुनिया भर में तापमान में वृद्धि रोकने को लेकर गंभीरता दिखाई देती है। नतीजतन, अब तक होने वाले अध्ययनों में जो आशंकाएं जताई जाती रहीं, वे अब प्रत्यक्ष खतरे के रूप में सामने आने लगी हैं। अंतरराष्ट्रीय शोध संस्थान मेकेंजी ग्लोबल इंस्टीट्यूट की हाल ही प्रकाशित रिपोर्ट के मुताबिक अगले दस सालों तक जलवायु परिवर्तन का असर विभिन्न देशों के सकल घरेलू उत्पाद पर भी साफतौर पर दिखने लगेगा। इसका कारण यह होगा कि मौसम में गरमी बढ़ेगी और उमस से पैदा होने वाली शारीरिक-मानसिक शिथिलता के चलते लोगों की कार्यक्षमता में कमी आने के साथ-साथ उनके काम करने के घंटों में तेजी से कमी आएगी। रिपोर्ट के मुताबिक आने वाले सालों में जलवायु परिवर्तन के संभावित खतरों की जद में शामिल एक सौ पांच देशों के प्राकृतिक एवं मानव संसाधन को प्रत्यक्ष जोखिम का सामना करना पड़ सकता है।

यह एक सामान्य-सी तस्वीर है, जिसे महज आशंका मान कर दरकिनार करना एक बड़े खतरे को न्योता देने की तरह होगा। पिछले कई सालों से दुनिया भर में मौसम में अप्रत्याशित उतार-चढ़ाव देखने को मिल रहे हैं। विश्व के किसी हिस्से में अपेक्षा से ज्यादा तापमान दर्ज किया जाता है तो कहीं गरमी के मौसम की अवधि लंबी हो रही है। पिघलते हिमनद अब यथार्थ हैं और एक बड़े खतरे के तौर पर देखे जा रहे हैं। इसकी वजह से समुद्र के जलस्तर में होने वाली मामूली बढ़ोतरी के नतीजे में पृथ्वी का क्या स्वरूप हो जा सकता है, इसकी कल्पना कोई भी कर सकता है। इन सबका असर मानव समाज पर किस तरह पड़ रहा है, यह भी किसी से छिपा नहीं है। सवाल है कि प्रत्यक्ष जोखिम से बचने या उससे लड़ने के मामले में ही जब कोई ठोस पहलकदमी नहीं हो पा रही है तो परोक्ष और दीर्घकालिक खतरों से कैसे निपटा जाएगा! लोगों की घटती कार्यक्षमता के कारण उनके काम की अवधि में कमी आने से व्यक्ति, परिवार के सामने जो आर्थिक चुनौतियां पैदा होंगी, श्रम उत्पादकता के साथ-साथ सकल घरेलू उत्पाद तक में जो कमी आएगी, उसके लिए कौन जिम्मेदार होगा?

खासतौर पर भारत की अर्थव्यवस्था पहले ही नाजुक हालत से गुजर रही है। ऐसे में अगर रिपोर्ट में जताई गई आशंका के मुताबिक श्रमिकों के काम के घंटों में बीस फीसद तक की कमी आने से भारतीय अर्थव्यवस्था में जीडीपी में 2.5 फीसद से 4.5 फीसद तक की गिरावट आई, तो क्या हम भावी आर्थिक चुनौतियों का अंदाजा लगा सकते हैं? बढ़ते वैश्विक तापमान के संदर्भ में लगभग हर मौके पर कार्बन डाइऑक्साइड के बेलगाम उत्सर्जन पर रोक लगाने को लेकर जताई जाने वाली चिंता के बरक्स हकीकत यह है कि इस समस्या की जटिलता में तेजी से बढ़ोतरी हो रही है। दुनिया के विकसित देश कार्बन उत्सर्जन के लिए सबसे ज्यादा जिम्मेदार हैं, लेकिन जैसे ही इसे जलवायु तापमान के सबसे गंभीर कारक के रूप में पेश किया जाता है, आरोप तीसरी दुनिया या विकासशील देशों पर थोप कर उन्हें ही इस पर लगाम लगाने की सलाह दी जाती है। क्या इसी तरह जिम्मेदारियों के टालमटोल से इस गंभीर और व्यापक समस्या का हल निकाला जा सकेगा?

कल्पमेधा

जब आप अनजाने मार्गों पर चलते हैं तो विकसित होते हैं। जब आप खतरा उठाते हैं तो आगे बढ़ते हैं।

-ओशो

तकनीक ने बदल डाली दुनिया

निरंकार सिंह

भारत में सोशल नेटवर्क का इस्तेमाल बढ़ा है। वाट्सऐप और वाइबर जैसे ऐप ने लोगों के बात करने का पूरा तरीका ही बदल दिया है। एक रिपोर्ट के मुताबिक हर साल दुनिया में सोशल मीडिया का उपयोग करने वालों की संख्या तेरह फीसद की दर से बढ़ रही है। भारत में यह दर इकतीस फीसद है। जनवरी, 2018 तक भारत में एक व्यक्ति द्वारा सोशल मीडिया पर बिताया जाने वाला औसत समय दो घंटा छब्बीस मिनट था।

नई-नई तकनीकों के आविष्कारों से हमारे रहन-सहन के साथ-साथ कामकाज के तरीके भी बदल रहे हैं। अब आपके सुख-दुख के साथी बनेंगे कृत्रिम मानव रोबोट। ये देखने में बिल्कुल इंसानों की तरह होंगे। नियान नाम के इस रोबोट की खासियत होगी कि यह न सिर्फ इंसानों जैसा दिखता है, बल्कि उनकी तरह बात भी करता है। यह जज्बातों का इजहार भी बखूबी कर सकता है। अकेलेपन के शिकार लोगों के लिए यह ऐसा दोस्त साबित हो सकता है, जिससे सारी बातें कही जा सकें। इसे नई चीजें सीखने में महारत हासिल है। साथ ही, अनुभव के आधार पर यह नए काम को और बेहतर तरीके से कर सकता है। इस नायाब कृत्रिम रोबोट को सैमसंग ने तैयार किया है। कंपनी ने नियान के छह अवतार लांच किए हैं। इनमें किसी को बैंकर, किसी को योग सिखाने वाले, तो किसी को न्यूज एंकर के रूप में। इन सबके हावभाव, चाल-ढाल और बोल-चाल का लहजा अलग-अलग है। अमेरिका के लॉस वेगास में एक इलेक्ट्रॉनिक शो के दौरान कंपनी की यूनिट स्टार लैब नियान को पहली बार दुनिया के सामने लाई है। यह मानव रोबोट नई भाव-भंगिमाएं प्रदर्शित करता है और हिंदी में भी संवाद कर सकता है।

पिछले एक दशक में लोगों की जीवन शैली में काफी बदलाव आया है। सेहत से जुड़ी जानकारी देने वाली फिटनेस और स्मार्ट वॉच लोगों की जिंदगी में जगह बना चुकी है। सेहतमंद रखने में मदद करने की क्षमता के चलते ये लोगों को पसंद आने लगीं। भविष्य में ऐसे ही और भी गैजेट्स और स्मार्ट बेल्ट बाजार में आने वाले हैं। इंटरनेट की उपलब्धता बढ़ने से गैजेटों का इस्तेमाल भी बढ़ा है। एलेक्सा और गूगल असिस्टेंट ने दफ्तरों में निजी सहायक (पीए) की जगह ले ली है। वॉयस कमांड के जरिए लोग घर के किसी भी कोने से घर के सामान को चला सकते हैं। अमेरिका में डिजिटल होम पहले से ही इस्तेमाल हो रहे हैं। इस दशक में बिना ड्राइवर वाली कारें भी सड़कों पर उतरी हैं। टेस्ला जैसी कंपनियों की इन कारों की बाजार में मांग है। इंटरनेट से जुड़ कर गूगल मैप और कृत्रिम मेधा का इस्तेमाल करके ये कारें लोगों को बिना किसी जोखिम के उनकी मंजिल तक पहुंचाती हैं। कई बड़ी कंपनियां इस तरह की कारें बनाने के अभियान पर जुट गई हैं। हो सकता है कि ये कारें भारत के लिए सही न हों। यहां पर इस तरह की कारों के साथ डाटा सुरक्षा से जुड़े मसले हैं। इस दशक में ड्रोन को लेकर महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई है। ड्रोन कैमरे से आसमान से जमीन की तस्वीरें लेने में आसानी होती है। हवाई टैक्सी जैसे विकल्प इसके चलते ही संभव हुए हैं। इससे लोगों को यातायात जाम से निजात मिल सकती है। उबर कंपनी ने लॉस एजेंलिस, डलास और मेलबर्न में हवाई टैक्सी शुरू करने का एलान भी किया है। कंपनी ने ड्रोन टैक्सी चलाने की तैयारी लगभग पूरी कर ली है। इस साल इसका परीक्षण होना है और 2023 में व्यावसायिक स्तर पर इसकी सेवाएं शुरू हो जाएंगी।

ऑनलाइन नक्शा अब हमारी जिंदगी का हिस्सा बन गया है। ओला, उबर जैसी सेवाएं गूगल मैप के जरिए काम करती हैं। इसकी मदद से बाहर से खाना तक मंगा सकना संभव हो गया है। यातायात और खाने की इन सेवाओं ने लोगों की जिंदगी को आसान बनाया है। मोबाइल के जरिए पैसे का लेनदेन एक समय पर बहुत ही सीमित था। लेकिन अब गूगल पे, पेटीएम और फोन पे जैसे कई ऐप आ गए हैं और जिंदगी को आसान बना दिया है। हालांकि इसमें कोई दो राय नहीं कि इससे जोखिम बढ़े हैं। भारत में इस तरह के ऐप का इस्तेमाल बढ़ने में नोटबंदी ने भी भूमिका निभाई है। लेकिन स्मार्टफोन का बढ़ता इस्तेमाल भी इसका एक अहम कारण है। पिछले एक दशक में ऑनलाइन खरीदारी बहुत तेजी से बढ़ी है। भारत में लोगों ने किराने के सामान से लेकर महंगे इलेक्ट्रॉनिक सामान और घर के सामान से लेकर सोना तक ऑनलाइन खरीदना शुरू कर दिया है। ऑनलाइन खरीदारी में छूट-रियायत, आसानी और समय बचने से लोगों में इसे लेकर दिलचस्पी बढ़ी है। एक अनुमान के मुताबिक भारत में ऑनलाइन कारोबार आज एक सौ बीस अरब डॉलर तक पहुंच गया है।

गूगल, माइक्रोसॉफ्ट जैसी कंपनियां कृत्रिम मेधा (एआइ) आधारित ऑपरेटिव सिस्टम के लिए काम कर रही हैं। एआइ की मदद से हमारी जिंदगी में

रोबोटों का इस्तेमाल दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। इसका इस्तेमाल खिलौनों में भी किया जा रहा है। रेलवे की टिकट बुकिंग, फिटनेस गजेट में भी इनका इस्तेमाल हो रहा है। विशेषज्ञों का कहना है कि शेयर बाजार और कारोबार प्रबंधन में भी इनका इस्तेमाल हो सकता है। भारत में सोशल नेटवर्क का इस्तेमाल बढ़ा है। वाट्सऐप और वाइबर जैसे ऐप ने लोगों के बात करने का पूरा तरीका ही बदल दिया है। एक रिपोर्ट के मुताबिक हर साल दुनिया भर में सोशल मीडिया का उपयोग करने वालों की संख्या तेरह फीसद की दर से बढ़ रही है। भारत में ये दर इकतीस फीसद है। जनवरी, 2018 तक भारत में एक व्यक्ति द्वारा सोशल मीडिया पर बिताया जाने वाला औसत समय दो घंटा छब्बीस मिनट था। सोशल मीडिया इस्तेमाल के मामले में तीन घंटे सत्तावन मिनट के साथ फिलीपीन सबसे ऊपर है। जापान में ये औसत समय अड़तालीस मिनट है। ट्विटर, फेसबुक, इंस्टाग्राम, हैलो और शेयर चैट भी हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में घुल मिल गए हैं।

पिछले दशक में टीवी का इस्तेमाल भी पूरी तरह बदल चुका है। एलसीडी, एलईडी टीवी एक स्मार्ट टीवी की तरह काम करने लगे हैं। अमेजन प्राइम, नेटफ्लिक्स और हॉट स्टार टीवी देखने के पैटर्न में बहुत बड़ा बदलाव लेकर आए हैं। क्लाउड स्टोरेज बहुत आम बन गई है। एक ड्राइव, ड्रॉप बॉक्स, गूगल फोटो स्मार्टफोन में होना आम बात है। हमारी तस्वीरें अपने आप गूगल फोटोज में सेव हो जाती हैं। कई उद्योग क्लाउड कंप्यूटरिंग का इस्तेमाल कर रहे हैं। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान (इसरो) ने इस दशक में कई सफलताएं पाई हैं। पहले ही प्रयास में मंगलयान सफल हुआ और चंद्रयान-2 भी छोड़ा गया। बड़ी संख्या में अंतरिक्ष में उपग्रह भेजे गए। अगले दशक में गगनयान और सूर्ययान की बारी है।

उद्योग जगत में रोबोट तकनीक का प्रयोग काफी बढ़ा है। सुरक्षा, बचाव और उत्पादन में बड़े पैमाने पर इनका उपयोग हो रहा है। रोबोट सोफिया ने बाजार में आते ही सनसनी पैदा कर दी थी। वह पर्सनल असिस्टेंट की तरह काम कर सकती थी और इंसान की तरह हावभाव दे सकती थी। औद्योगिक इस्तेमाल में लाए जा रहे रोबोट घरेलू इस्तेमाल के लिए भी काम आ रहे हैं। 3डी प्रिंटिंग इस दशक की एक महत्त्वपूर्ण खोज है। साउथ कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी में एक ऐसी तकनीक विकसित की गई की है जो खतरे का पता लगा सकती है और मौसम के अनुसार काम कर सकती है। ब्लॉक चेन और बिट कॉइन का इस्तेमाल बढ़ा है। तकनीकी कंपनियां आभासी मुद्रा का इस्तेमाल करने की प्रक्रिया में हैं। इससे दुनिया में बिट कॉइन की मांग बढ़ी है। बिट कॉइन को भारत में संचालन की इजाजत नहीं है। पिछले एक दशक में एलईडी का उपयोग काफी बढ़ा है। सीसीटीवी कैमरा निगरानी का एक बड़ा माध्यम बन गए हैं। किंडल और ई-बुक्स ने पढ़ने का तरीका बदल दिया है। ऑडियो बुक्स और पॉडकास्ट भी जानकारी पाने का महत्त्वपूर्ण साधन बन गए हैं। पिछला दशक विभिन्न तकनीकी प्रगतियों के लिए अहम रहा है। लेकिन इस विकास को बनाए रखने के लिए साइबर सुरक्षा को मजबूत किया जाना चाहिए, वरना ये हमें खतरे में डाल सकता है।

अपशब्दों की हिंसा

विभा त्रिपाठी

दुनिया मेरे आगे

आज जब हर जगह भारत को स्वच्छ बनाने की मुहिम चलाई जा रही है, एक प्रश्न अनुत्तरित-सा अब उत्तर पाना चाहता है। अपशब्द मुक्त भारत का सृजन क्या इस इक्कीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में कल्पित किया जा सकता है? क्या व्यक्ति को उसकी दूषित मानसिकता से अलग किया जा सकता है? क्या लैंगिक हिंसा की जड़ों में भाषायी हिंसा को एक मुख्य कारण माना जा सकता है? क्या व्यक्ति को उसके मूलभूत मानव अधिकार, गरिमा के साथ जीने का अधिकार उपलब्ध हो पाएगा? अब जबकि शिक्षा एक मौलिक अधिकार के रूप में हम सभी को उपलब्ध हो रही है और हर जाति, लिंग और वर्ग के लोगों को कुछ वर्षों तक मुफ्त शिक्षा की व्यवस्था की जा रही है... तो उसके पीछे लक्ष्य है कि हम वैश्वीकरण के दौर में एक नए भारत के निर्माण में अपना सक्रिय योगदान करें।

किसी देश की शिक्षा व्यवस्था और भाषा ही इस बात के द्योतक होते हैं कि उस देश के लोग एक सभ्य समाज के नागरिक हैं। एक सभ्य समाज का आधार उस समाज के नागरिकों द्वारा प्रयुक्त की जा रही भाषा होता है। ऐसे में यह विचार करना जरूरी है कि कब और कहां हम गलत हो गए! आज चाहे फिल्मी दुनिया की बात हो या फिर टीवी सीरियल की... हर जगह धड़ल्ले से द्विअर्थी संवादों का प्रयोग किया जा रहा है। ऐसा लगता है मानो बिना अश्लील भाषा के न कोई कहानी आगे बढ़ सकती है और न कोई हास्य पूर्ण हो सकता है। न सिर्फ तथाकथित अनपढ़ लोग अपशब्द का प्रयोग करते हैं, बल्कि कॉन्वेंट स्कूल में पढ़ने वाले छात्र और छात्राएं भी अपशब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से करते दिखते हैं। यहां तक कि उन्होंने इन शब्दों के लिए शब्द-संक्षेपण भी विकसित कर लिया है और निराशाजनक तौर पर भाषायी हिंसा को अपनी रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बना लिया है।

समस्या यह नहीं है कि वे भाषा कौन-सी प्रयोग कर रहे हैं, बल्कि यह है कि उनकी सोच कैसे और क्यों इतनी कुंठाग्रस्त हो गई! आपने अपशब्दों का प्रयोग बोल कर किया या फिर किसी के लिए अपने मन में ही उन शब्दों को उच्चरित किया, इसमें बहुत फर्क नहीं पड़ता। मुख्य समस्या है एक घृणित मानसिकता की। मूलतः जननांगों पर आधारित ऐसे अपशब्दों का प्रयोग कर हम क्या सिद्ध करना चाहते हैं? हम कौन-सा वर्चस्व हासिल करना चाहते हैं और किस पर? एक तरफ तो हम देवियों की आराधना करते हैं, पर दूसरी तरफ केवल अपने क्षोभ को प्रकट करने के लिए मां-बहन के नाम की गालियों का प्रयोग करते हैं।

आज जाने कितने ऐसे कानून बन चुके हैं जिनमें गाली-गलौज वाली भाषा का प्रयोग अपराध माना गया है, लेकिन जब पूरा समाज ही ऐसा अपराधी हो तो किसके खिलाफ मुकदमा दर्ज किया जाए और किससे न्याय की उम्मीद की जाए? अब जब बालिकाओं को भी शिक्षा मिल रही है, उनके अंदर बराबरी का भाव आ रहा है तो वे भी खुलेआम अपशब्दों का प्रयोग कर शायद यही दिखाना चाहती हैं कि लो, हो गए हम भी ताकतवर! दरअसल, आज की युवा पीढ़ी जितनी तेजी से नकारात्मक भाव और विचारों की ओर आकर्षित हो रही है, वह निराशाजनक है।

ऐसे में बस यही याद आता है कि हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे। समस्या की जड़ों में जाएं तो एक पुरानी कहावत याद आती है कि 'बोया पेड़ बबूल का तो आम कहां से होय'। यानी सारा दोष युवा पीढ़ी का नहीं है, बल्कि प्रौढ़ावस्था के लोगों की भी है। हमने यह कभी नहीं सोचा था कि हमारी भाषायी हिंसा का इतना वीभत्स स्वरूप सामने आएगा। इसमें बदलाव आ सकता है। बस सिर्फ यह सोच विकसित करना है कि क्या हम बर्दाश्त कर सकेंगे यह अपशब्द, जब इनका प्रयोग कोई मेरे ऊपर करेगा... मेरी क्या प्रतिक्रिया होगी। फिर यह सोचना चाहिए कि ऐसी ही प्रतिक्रिया शायद उस व्यक्ति के मन में भी होती होगी, जिसके ऊपर मैंने अपने प्रभुत्व का इस्तेमाल करते हुए अपशब्दों का प्रयोग किया है।

यों भी वह व्यवहार हमें दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए, जिसे खुद अपने साथ किए जाने पर हम बर्दाश्त नहीं कर सकते। महात्मा गांधी की डेढ़ सौवीं जयंती मना रहे विश्व को उनका यह कथन याद करना होगा कि जो बदलाव आप पूरे विश्व में लाना चाहते हैं, उसे पहले अपने अंदर लाने का प्रयास करें। इसके साथ ही हमें रिश्तों के महत्त्व को भी समझना होगा। तार-तार हो जाती है रिश्तों की मधुरता, जब पड़ती है चोट भावनाओं के ऊपर। समय की मांग या मजबूरी से किसी की चुप्पी का कभी भी दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। हमें अपनी भाषा बिगाड़ने की जगह अपने तर्क को मजबूत करना चाहिए। किसी भी तरह हिंसा से मुक्त भारत की शुभेच्छाओं को जेहन में संजोया है उस भारत ने, जिसमें जन्मे थे स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी और बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर।

संविधान के साथ

देश को उसका सबसे पवित्र ग्रंथ समर्पित करते हुए बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर ने कहा था कि यह ऐसी किताब है जो युद्ध काल में भी देश की रक्षा करेगी और शांतिकाल के लिए भी प्रासंगिक होगी। सात दशक हो गए देश में संविधान को लागू हुए। बड़ी-बड़ी संवैधानिक जटिलताएं खड़ी हुईं, लोकतांत्रिक मूल्य संकट में नजर आए। प्राकृतिक आपदाएं आईं। पड़ोसी देशों से जंग हुई। आपातकाल का काला अध्याय भी देखा। पर संविधान अपने नियमों-उपबंधों के कवच से देश को हर प्रतिकूल हालात से उबारता रहा। आज जो लोग यह सोच रहे हैं कि संविधान बदला जा सकता है वे या तो नादान और अज्ञानी हैं या फिर उन्होंने संविधान पढ़ा नहीं है।

दरअसल, कोई भी ताकत हमारे संविधान के मूल स्वरूप को नहीं बदल सकती। अनुच्छेद 368 में लिखा हुआ है कि संसद भारत के संविधान में संशोधन कर सकती है। संशोधन 103 बार किया भी जा चुका है। सुप्रीम कोर्ट साफ कर चुका है कि संसद संविधान में संशोधन तो कर सकती है लेकिन मूल ढांचे में संशोधन करने का अधिकार उसे नहीं है। संविधान का मूल ढांचा संघीय व्यवस्था, प्रजातंत्र, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, मौलिक अधिकार और धर्मनिरपेक्षता है। लोग बिना वजह की भ्रांतियां फैला रहे हैं। जब देश की संसद ही मूल ढांचे को बदल नहीं सकती तो फिर देश को हिंदू राष्ट्र या मुसलिम राष्ट्र बनाने की बात कहां से खड़ी हो गई? ये सभी बातें पूरी तरह से गलत हैं। जो लोग ऐसा कह रहे हैं उनकी बातों से लगता है कि उन्होंने संविधान पढ़ा ही नहीं है। अनुच्छेद 370 और 35 ए को हटाए जाने का इससे कोई संबंध नहीं है। तीन तलाक का भी इससे कोई लेना-देना नहीं है। राजनीतिक पार्टियों का अपना एजेंडा होता है। वे बहुमत लेकर आती हैं। उन्हें क्या काम करना है इसे चुनाव के समय बाकायदा अपने घोषणा पत्र में जनता के सामने रखती हैं। केंद्र सरकार अपने घोषणा पत्र में कही गई बातें अमल में ला रही है।

भारत के संविधान में अनुच्छेद पांच से तेरह तक साफ लिखा हुआ है कि नागरिकता देने या न देने का अधिकार भारत की संसद को है। इसके लिए वह कानून बना सकती है, यह संघ का कार्यक्षेत्र है, इसमें राज्य सरकारों का कोई लेना-देना नहीं है। केंद्र सरकार ने नागरिकता कानून में जो संशोधन किया उसके मुताबिक इस्लामिक देश पाकिस्तान, अफगानिस्तान और बांग्लादेश से धार्मिक आधार पर उत्पीड़न के शिकार जो हिंदू, सिख, ईसाई, बौद्ध या पारसी अल्पसंख्यक आएंगे उन्हें चाहे तो केंद्र सरकार नागरिकता दे सकेगी। इस पर सारा बवाल खड़ा हुआ है। कुछ राज्य सरकारें कह रही हैं कि हम इसे लागू नहीं करेंगे। संसद के दोनों सदनों ने यह कानून पास किया है, उन दोनों सदनों में सभी प्रदेशों के सांसद और प्रतिनिधि भी हैं। यह कानून राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के बाद अधिसूचित होकर लागू भी हो गया। अब कहा जा रहा है कि इसे वापस ले लो! इसे वापस करने के दो ही तरीके हैं। पहला, सुप्रीम कोर्ट कहे कि यह संविधान के खिलाफ है। दूसरा, विपक्ष आगामी लोकसभा चुनाव में बहुमत लेकर आए और अपनी सरकार बनने पर इस कानून को फिर से बदल दे। इसके अलावा तीसरा कोई रास्ता नजर नहीं आता।

● *दिपिका शर्मा, सूरजकुंड, गोरखपुर*

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

ये नायक

अयोध्या के मोहम्मद शरीफ को इस वर्ष पद्मश्री सम्मान से नवाजा गया है। वे पिछले कई सालों से बिना धार्मिक भेदभाव के अब तक 3000 हिंदुओं और 2500 मुसलमानों के लावारिस शवों का अंतिम संस्कार कर चुके हैं। इसी तरह 68 वर्ष के हरेकाल हजाब्बा अपनी फलों की छोटी-सी दुकान की आमदनी से प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालय बनवा चुके हैं और अब विश्वविद्यालय बनवाने की तैयारी कर रहे हैं। लंगर बाबा के नाम से मशहूर 84 वर्षीय जगदीश लाल आहूजा पिछले 39 सालों से चंडीगढ़ के पीजीआई में जरूरतमंदों व मरीजों को मुफ्त में खाना खिलाते हैं। देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अपना सब कुछ दांव पर लगा कर लोगों की सेवा करने को ही परम धर्म समझते हैं। ऐसे लोगों के कारण ही इंसानियत कायम है। ये हमारे असली हीरो हैं।

● *हेमा हरि उपाध्याय अक्षत, उज्जैन*

जानलेवा लापरवाही

दिल्ली के भजनपुरा इलाके में कोचिंग केंद्र की निर्माणाधीन इमारत ढहने से चार छात्रों समेत पांच लोगों की मौत के समाचार ने मन दुखी कर दिया। आखिर कब तक बेकसूर लोग लापरवाही के शिकार होते रहेंगे? सूरत में कोचिंग सेंटर की भयावह आग अभी आंखों के सामने ही है। सही है कि हादसे बता कर नहीं होते पर यह तय है कि उनकी कोई न कोई वजह जरूर होती है और आमतौर पर उनसे बचा जा सकता है। आज कोचिंग केंद्रों की बहार आई हुई है, मगर उनमें बच्चों की सुरक्षा पर कितना ध्यान दिया जाता है, कहना मुश्किल है।

● *साजिद अली, चंदन नगर, इंदौर*

जागरूक हों उपभोक्ता

अगर दूषित और मिलावटी खानपान से हमारी सेहत खराब होगी तो इससे परेशानी और आर्थिक नुकसान हमारा होगा, न कि सरकारों का। लिहाजा, खानपान की गुणवत्ता में सुधार के लिए हमें सरकारों का मुंह नहीं ताकना चाहिए, बल्कि खुद जागरूक होकर इसके लिए अपने स्तर पर उपाय करने चाहिए। वैसे सरकारों ने खानपान का घटिया और मिलावटी सामान बेचने वालों पर शिकंजा कसने के लिए विभागों का गठन भी किया है, लेकिन कुछ इन विभागों की लापरवाही और कुछ आम लोगों द्वारा गलत-घटिया खानपान का सामान बेचने वालों की शिकायत संबंधित विभाग में न कराने के कारण सरकारों के प्रयास इस दिशा में सफल नहीं हो पा रहे हैं।

एक तरफ तो सरकारें भारत को स्वस्थ बनाने का सपना देख रही हैं मगर दूसरी तरफ खाने-पीने की चीजों की गुणवत्ता सुधारने की तरफ अपेक्षित ध्यान नहीं दे रहीं। क्या इसी तरह बनेगा स्वस्थ भारत? यह कहना भी उचित होगा कि विज्ञापनों के भ्रम में आकर अपनी सेहत के साथ खिलवाड़ करना सरासर गलत है। सरकारें लोगों को मिलावटी या घटिया गुणवत्ता वाली चीजों से बचने के लिए जागरूकता के कई अभियान और हेल्पलाइनें भी समय-समय पर शुरू करती रही हैं। लेकिन जब तक लोग चीजों की गुणवत्ता पर ध्यान नहीं देंगे और किसी गड़बड़ी की शिकायत संबंधित विभाग या उपभोक्ता अदालत में नहीं करेंगे तब तक सरकार के उपभोक्ता संरक्षण के प्रयास कामयाब नहीं हो सकते। सरकार को नौकरी देने के भ्रामक विज्ञापनों और ऑनलाइन बाजार के बाबत भी ठोस कदम उठाने चाहिए, ताकि इनका कोई शिकार न हो सके।

● *राजेश कुमार चौहान, जालंधर*

नई दिल्ली

www.readwhere.com